अथैकोनविंशोऽध्यायः

किम्पुरुष और भारतवर्षका वर्णन

श्रीशुक उवाच

किम्पुरुषे वर्षे भगवन्तमादिपुरुषं लक्ष्मणाग्रजं सीताभिरामं रामं तच्चरणसंनिकर्षाभिरतः परमभागवतो हनुमान् सह किम्पुरुषैः अविरतभक्तिरुपास्ते॥ १॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—राजन्! किम्पुरुषवर्षमें श्रीलक्ष्मणजीके बड़े भाई, आदिपुरुष, सीताहृदयाभिराम भगवान् श्रीरामके चरणोंकी सन्निधिके रसिक परम भागवत श्रीहनुमान्‌जी अन्य किन्नरोंके सहित अविचल भक्तिभावसे उनकी उपासना करते हैं॥ १॥

आर्ष्टिषेणेन सह गन्धर्वैरनुगीयमानां परमकल्याणीं भर्तृभगवत्कथां समुपशृणोति स्वयं चेदं गायति॥ २॥

वहाँ अन्य गन्धर्वोंके सहित आर्ष्टिषेण उनके स्वामी भगवान् रामकी परम कल्याणमयी गुणगाथा गाते रहते हैं। श्रीहनुमान्‌जी उसे सुनते हैं और स्वयं भी इस मन्त्रका जप करते हुए इस प्रकार उनकी स्तुति करते हैं॥ २॥

ॐ नमो भगवते उत्तमश्लोकाय नम आर्यलक्षणशीलव्रताय नम उपशिक्षितात्मन उपासितलोकाय नमः साधुवादनिकषणाय[1] नमो ब्रह्मण्यदेवाय महापुरुषाय महाराजाय नम इति॥ ३॥

'हम ॐकारस्वरूप पवित्रकीर्ति भगवान् श्रीरामको नमस्कार करते हैं। आपमें सत्पुरुषोंके लक्षण, शील और आचरण विद्यमान हैं; आप बड़े ही संयतचित्त, लोकाराधनतत्पर, साधुताकी परीक्षाके लिये कसौटीके समान और अत्यन्त ब्राह्मणभक्त हैं। ऐसे महापुरुष महाराज रामको हमारा पुनः-पुनः प्रणाम है'॥ ३॥

यत्तद्विशुद्धानुभवमात्रमेकं
स्वतेजसा ध्वस्तगुणव्यवस्थम्।
प्रत्यक् प्रशान्तं सुधियोपलम्भनं
ह्यनामरूपं निरहं प्रपद्ये॥ ४

'भगवन्! आप विशुद्ध बोधस्वरूप, अद्वितीय, अपने स्वरूपके प्रकाशसे गुणोंके कार्यरूप जाग्रदादि सम्पूर्ण अवस्थाओंका निरास करनेवाले, सर्वान्तरात्मा, परम शान्त, शुद्ध बुद्धिसे ग्रहण किये जानेयोग्य, नाम-रूपसे रहित और अहंकारशून्य हैं; मैं आपकी शरणमें हूँ॥ ४॥

मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणं
रक्षोवधायैव न केवलं विभोः।
कुतोऽन्यथा स्याद्रमतः स्व आत्मनः
सीताकृतानि व्यसनानीश्वरस्य॥ ५

प्रभो! आपका मनुष्यावतार केवल राक्षसोंके वधके लिये ही नहीं है, इसका मुख्य उद्देश्य तो मनुष्योंको शिक्षा देना है! अन्यथा, अपने स्वरूपमें ही रमण करनेवाले साक्षात् जगदात्मा जगदीश्वरको सीताजीके वियोगमें इतना दुःख कैसे हो सकता था॥ ५॥

---

१. प्रा० पा०—वादधिषणाय।

न वै स आत्माऽऽत्मवतां सुहृत्तमः
सक्तस्त्रिलोक्यां भगवान् वासुदेवः।
न स्त्रीकृतं कश्मलमश्नुवीत
न लक्ष्मणं चापि विहातुमर्हति॥ ६

न जन्म नूनं महतो न सौभगं
न वाङ् न बुद्धिर्नाकृतिस्तोषहेतुः।
तैर्यद्विसृष्टानपि[1] नो वनौकस-
श्चकार सख्ये बत लक्ष्मणाग्रजः॥ ७

सुरोऽसुरो वाप्यथ वानरो नरः
सर्वात्मना यः सुकृतज्ञमुत्तमम्।
भजेत रामं मनुजाकृतिं हरिं
य उत्तराननयत्कोसलान्दिवमिति॥ ८

आप धीर पुरुषोंके आत्मा* और प्रियतम भगवान् वासुदेव हैं; त्रिलोकीकी किसी भी वस्तुमें आपकी आसक्ति नहीं है। आप न तो सीताजीके लिये मोहको ही प्राप्त हो सकते हैं और न लक्ष्मणजीका त्याग ही कर सकते हैं†॥ ६॥ आपके ये व्यापार केवल लोकशिक्षाके लिये ही हैं। लक्ष्मणाग्रज! उत्तम कुलमें जन्म, सुन्दरता, वाक्चातुरी, बुद्धि और श्रेष्ठ योनि—इनमेंसे कोई भी गुण आपकी प्रसन्नताका कारण नहीं हो सकता, यह बात दिखानेके लिये ही आपने इन सब गुणोंसे रहित हम वनवासी वानरोंसे मित्रता की है॥ ७॥ देवता, असुर, वानर अथवा मनुष्य—कोई भी हो, उसे सब प्रकारसे श्रीरामरूप आपका ही भजन करना चाहिये; क्योंकि आप नररूपमें साक्षात् श्रीहरि ही हैं और थोड़े कियेको भी बहुत अधिक मानते हैं। आप ऐसे आश्रितवत्सल हैं कि जब स्वयं दिव्यधामको सिधारे थे, तब समस्त उत्तरकोसलवासियोंको भी अपने साथ ही ले गये थे'॥ ८॥

अथ दशमोऽध्यायः

भगवान् श्रीरामकी लीलाओंका वर्णन

श्रीशुक उवाच

खट्वांगाद् दीर्घबाहुश्च रघुस्तस्मात् पृथुश्रवाः।
अजस्ततो महाराजस्तस्माद् दशरथोऽभवत्॥ १
तस्यापि भगवानेष साक्षाद् ब्रह्ममयो हरिः।
अंशांशेन चतुर्धागात् पुत्रत्वं प्रार्थितः सुरैः।
रामलक्ष्मणभरतशत्रुघ्ना इति संज्ञया॥ २
तस्यानुचरितं राजन्नृषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
श्रुतं हि वर्णितं भूरि त्वया सीतापतेर्मुहुः॥ ३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! खट्वांगके पुत्र दीर्घबाहु और दीर्घबाहुके परम यशस्वी पुत्र रघु हुए। रघुके अज और अजके पुत्र महाराज दशरथ हुए॥ १॥ देवताओंकी प्रार्थनासे साक्षात् परमब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीहरि ही अपने अंशांशसे चार रूप धारण करके राजा दशरथके पुत्र हुए। उनके नाम थे—राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न॥ २॥

परीक्षित्! सीतापति भगवान् श्रीरामका चरित्र तो तत्त्वदर्शी ऋषियोंने बहुत कुछ वर्णन किया है और तुमने अनेक बार उसे सुना भी है॥ ३॥

गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं
पद्मपद्भ्यां प्रियायाः
पाणिस्पर्शाक्षमाभ्यां मृजितपथरुजो
यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।
वैरूप्याच्छूर्पणख्याः प्रियविरहरुषा-
ऽऽरोपितभ्रूविजृम्भ-
त्रस्ताब्धिर्बद्धसेतुः खलदवदहनः
कोसलेन्द्रोऽवतान्नः ॥ ४

भगवान् श्रीरामने अपने पिता राजा दशरथके सत्यकी रक्षाके लिये राजपाट छोड़ दिया और वे वन-वनमें फिरते रहे। उनके चरणकमल इतने सुकुमार थे कि परम सुकुमारी श्रीजानकीजीके करकमलोंका स्पर्श भी उनसे सहन नहीं होता था। वे ही चरण जब वनमें चलते-चलते थक जाते, तब हनूमान् और लक्ष्मण उन्हें दबा-दबाकर उनकी थकावट मिटाते। शूर्पणखाको नाक-कान काटकर विरूप कर देनेके कारण उन्हें अपनी प्रियतमा श्रीजानकीजीका वियोग भी सहना पड़ा। इस वियोगके कारण क्रोधवश उनकी भौंहें तन गयीं, जिन्हें देखकर समुद्रतक भयभीत हो गया। इसके बाद उन्होंने समुद्रपर पुल बाँधा और लंकामें जाकर दुष्ट राक्षसोंके जंगलको दावाग्निके समान दग्ध कर दिया। वे कोसलनरेश हमारी रक्षा करें॥ ४॥

विश्वामित्राध्वरे येन मारीचाद्या निशाचराः।
पश्यतो लक्ष्मणस्यैव हता नैर्ऋतपुंगवाः॥ ५

भगवान् श्रीरामने विश्वामित्रके यज्ञमें लक्ष्मणके सामने ही मारीच आदि राक्षसोंको मार डाला। वे सब बड़े-बड़े राक्षसोंकी गिनतीमें थे॥ ५॥ परीक्षित्! जनकपुरमें सीताजीका स्वयंवर हो रहा था। संसारके चुने हुए वीरोंकी सभामें भगवान् शंकरका वह भयंकर धनुष रखा हुआ था। वह इतना भारी था कि तीन सौ वीर बड़ी कठिनाईसे उसे स्वयंवरसभामें ला सके थे। भगवान् श्रीरामने उस धनुषको बात-की-बातमें उठाकर उसपर डोरी चढ़ा दी और खींचकर बीचोबीचसे उसके दो टुकड़े कर दिये—ठीक वैसे ही, जैसे हाथीका बच्चा खेलते-खेलते ईख तोड़ डाले॥ ६॥

यो लोकवीरसमितौ धनुरैशमुग्रं
सीतास्वयंवरगृहे त्रिशतोपनीतम्।
आदाय बालगजलील इवेक्षुयष्टिं
सज्जीकृतं नृप विकृष्य बभञ्ज मध्ये॥ ६

भगवान्‌ने जिन्हें अपने वक्षःस्थलपर स्थान देकर सम्मानित किया है, वे श्रीलक्ष्मीजी ही सीताके नामसे जनकपुरमें अवतीर्ण हुई थीं। वे गुण, शील, अवस्था, शरीरकी गठन और सौन्दर्यमें सर्वथा भगवान् श्रीरामके अनुरूप थीं। भगवान्‌ने धनुष तोड़कर उन्हें प्राप्त कर लिया। अयोध्याको लौटते समय मार्गमें उन परशुरामजीसे भेंट हुई जिन्होंने इक्कीस बार पृथ्वीको राजवंशके बीजसे भी रहित कर दिया था। भगवान्‌ने उनके बढ़े हुए गर्वको नष्ट कर दिया॥ ७॥

जित्वानुरूपगुणशीलवयोऽङ्गरूपां
सीताभिधां श्रियमुरस्यभिलब्धमानाम्।
मार्गे व्रजन् भृगुपतेर्व्यनयत् प्ररूढं
दर्पं महीमकृत यस्त्रिरराजबीजाम्॥ ७

यः सत्यपाशपरिवीतपितुर्निदेशं
स्त्रैणस्य चापि शिरसा जगृहे सभार्यः।
राज्यं श्रियं प्रणयिनः सुहृदो निवासं
त्यक्त्वा ययौ वनमसूनिव मुक्तसंगः॥ ८

इसके बाद पिताके वचनको सत्य करनेके लिये उन्होंने वनवास स्वीकार किया। यद्यपि महाराज दशरथने अपनी पत्नीके अधीन होकर ही उसे वैसा वचन दिया था, फिर भी वे सत्यके बन्धनमें बँध गये थे। इसलिये भगवान्‌ने अपने पिताकी आज्ञा शिरोधार्य की। उन्होंने प्राणोंके समान प्यारे राज्य, लक्ष्मी, प्रेमी, हितैषी, मित्र और महलोंको वैसे ही छोड़कर अपनी पत्नीके साथ यात्रा की, जैसे मुक्तसंग योगी प्राणोंको छोड़ देता है॥ ८॥ वनमें पहुँचकर भगवान्‌ने राक्षसराज रावणकी बहिन शूर्पणखाको विरूप कर दिया। क्योंकि उसकी बुद्धि बहुत ही कलुषित, कामवासनाके कारण अशुद्ध थी। उसके पक्षपाती खर, दूषण, त्रिशिरा आदि प्रधान-प्रधान भाइयोंको—जो संख्यामें चौदह हजार थे—हाथमें महान् धनुष लेकर भगवान् श्रीरामने नष्ट कर डाला; और अनेक प्रकारकी कठिनाइयोंसे परिपूर्ण वनमें वे इधर-उधर विचरते हुए निवास करते रहे॥ ९॥ परीक्षित्! जब रावणने सीताजीके रूप, गुण, सौन्दर्य आदिकी बात सुनी तो उसका हृदय कामवासनासे आतुर हो गया। उसने अद्‌भुत हरिनके वेषमें मारीचको उनकी पर्णकुटीके पास भेजा। वह धीरे-धीरे भगवान्‌को वहाँसे दूर ले गया। अन्तमें भगवान्‌ने अपने बाणसे उसे बात-की-बातमें वैसे ही मार डाला, जैसे दक्षप्रजापतिको वीरभद्रने मारा था॥ १०॥ जब भगवान् श्रीराम जंगलमें दूर निकल गये, तब (लक्ष्मणकी अनुपस्थितिमें) नीच राक्षस रावणने भेड़ियेके समान विदेहनन्दिनी सुकुमारी श्रीसीताजीको हर लिया। तदनन्तर वे अपनी प्राणप्रिया सीताजीसे बिछुड़कर अपने भाई लक्ष्मणके साथ वन-वनमें दीनकी भाँति घूमने लगे। और इस प्रकार उन्होंने यह शिक्षा दी कि 'जो स्त्रियोंमें आसक्ति रखते हैं, उनकी यही गति होती है'॥ ११॥ इसके बाद भगवान्‌ने उस जटायुका दाह-संस्कार किया, जिसके सारे कर्मबन्धन भगवत्सेवारूप कर्मसे पहले ही भस्म हो चुके थे। फिर भगवान्‌ने कबन्धका संहार किया और इसके अनन्तर सुग्रीव आदि वानरोंसे मित्रता करके

रक्षःस्वसुर्व्यकृत रूपमशुद्धबुद्धे-
स्तस्याः खरत्रिशिरदूषणमुख्यबन्धून्।
जघ्ने चतुर्दशसहस्रमपारणीय-
कोदण्डपाणिरटमान उवास कृच्छ्रम्॥ ९

सीताकथाश्रवणदीपितहृच्छयेन
सृष्टं विलोक्य नृपते दशकन्धरेण।
जघ्नेऽद्भुतैणवपुषाऽऽश्रमतोऽपकृष्टो
मारीचमाशु विशिखेन यथा कमुग्रः॥ १०

रक्षोऽधमेन वृकवद् विपिनेऽसमक्षं
वैदेहराजदुहितर्यपयापितायाम्।
भ्रात्रा वने कृपणवत् प्रियया वियुक्तः
स्त्रीसंगिनां गतिमिति प्रथयंश्चचार॥ ११

दग्ध्वाऽऽत्मकृत्यहतकृत्यमहन् कबन्धं
सख्यं विधाय कपिभिर्दयितागतिं तैः।

बुद्ध्वाथ वालिनि हते प्लवगेन्द्रसैन्यै-
र्वेलामगात् स मनुजोऽजभवार्चिताङ्घ्रिः ॥ १२

यद्रोषविभ्रमविवृत्तकटाक्षपात-[1]
संभ्रान्तनक्रमकरो भयगीर्णघोषः ।
सिन्धुः शिरस्यर्हणं परिगृह्य रूपी
पादारविन्दमुपगम्य बभाष एतत् ॥ १३

न त्वां वयं जडधियो नु विदाम भूमन्[2]
कूटस्थमादिपुरुषं जगतामधीशम् ।
यत्सत्त्वतः सुरगणा रजसः प्रजेशा
मन्योश्च भूतपतयः स भवान् गुणेशः ॥ १४

कामं प्रयाहि जहि विश्रवसोऽवमेहं
त्रैलोक्यरावणमवाप्नुहि वीर पत्नीम् ।
बध्नीहि सेतुमिह ते यशसो वितत्यै
गायन्ति दिग्विजयिनो यमुपेत्य भूपाः ॥ १५

बद्ध्वोदधौ रघुपतिर्विविधाद्रिकूटैः
सेतुं कपीन्द्रकरकम्पितभूरुहाङ्गैः ।
सुग्रीवनीलहनुमत्प्रमुखैरनीकै-[3]
र्लङ्कां विभीषणदृशाऽऽविशदग्रदग्धाम् ॥ १६

वालिका वध किया, तदनन्तर वानरोंके द्वारा अपनी प्राणप्रियाका पता लगवाया। ब्रह्मा और शंकर जिनके चरणोंकी वन्दना करते हैं वे भगवान् श्रीराम मनुष्यकी-सी लीला करते हुए बंदरोंकी सेनाके साथ समुद्रतटपर पहुँचे॥ १२॥ (वहाँ उपवास और प्रार्थनासे जब समुद्रपर कोई प्रभाव न पड़ा, तब) भगवान्ने क्रोधकी लीला करते हुए अपनी उग्र एवं टेढ़ी नजर समुद्रपर डाली। उसी समय समुद्रके बड़े-बड़े मगर और मच्छ खलबला उठे। डर जानेके कारण समुद्रकी सारी गर्जना शान्त हो गयी। तब समुद्र शरीरधारी बनकर और अपने सिरपर बहुत-सी भेंटें लेकर भगवान्के चरणकमलोंकी शरणमें आया और इस प्रकार कहने लगा॥ १३॥ 'अनन्त! हम मूर्ख हैं; इसलिये आपके वास्तविक स्वरूपको नहीं जानते। जानें भी कैसे? आप समस्त जगत्के एकमात्र स्वामी, आदिकारण एवं जगत्के समस्त परिवर्तनोंमें एकरस रहनेवाले हैं। आप समस्त गुणोंके स्वामी हैं। इसलिये जब आप सत्त्वगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब देवताओंकी, रजोगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब प्रजापतियोंकी और तमोगुणको स्वीकार कर लेते हैं तब आपके क्रोधसे रुद्रगणकी उत्पत्ति होती है॥ १४॥ वीरशिरोमणे! आप अपनी इच्छाके अनुसार मुझे पार कर जाइये और त्रिलोकीको रुलानेवाले विश्रवाके कुपूत रावणको मारकर अपनी पत्नीको फिरसे प्राप्त कीजिये। परन्तु आपसे मेरी एक प्रार्थना है। आप यहाँ मुझपर एक पुल बाँध दीजिये। इससे आपके यशका विस्तार होगा और आगे चलकर जब बड़े-बड़े नरपति दिग्विजय करते हुए यहाँ आयेंगे, तब वे आपके यशका गान करेंगे'॥ १५॥

भगवान् श्रीरामजीने अनेकानेक पर्वतोंके शिखरोंसे समुद्रपर पुल बाँधा। जब बड़े-बड़े बन्दर अपने हाथोंसे पर्वत उठा-उठाकर लाते थे, तब उनके वृक्ष और बड़ी-बड़ी चट्टानें थर-थर काँपने लगती थीं। इसके बाद विभीषणकी सलाहसे भगवान्ने सुग्रीव, नील, हनूमान् आदि प्रमुख वीरों और वानरीसेनाके साथ लंकामें प्रवेश किया। वह तो श्रीहनूमान्जीके द्वारा पहले ही जलायी जा चुकी थी॥ १६॥

---

१. मकटाक्षविटंकपात०। २. नूनं। ३. रनेकै०।

सा वानरेन्द्रबलरुद्धविहारकोष्ठ-[1]
श्रीद्वारगोपुरसदोवलभीविटंका ।
निर्भज्यमानधिषणध्वजहेमकुम्भ-
शृंगाटका गजकुलैर्ह्रदिनीव घूर्णा ॥ १७

उस समय वानरराजकी सेनाने लंकाके सैर करने और खेलनेके स्थान, अन्नके गोदाम, खजाने, दरवाजे, फाटक, सभाभवन, छज्जे और पक्षियोंके रहनेके स्थानतकको घेर लिया। उन्होंने वहाँकी वेदी, ध्वजाएँ, सोनेके कलश और चौराहे तोड़-फोड़ डाले। उस समय लंका ऐसी मालूम पड़ रही थी, जैसे झुंड-के-झुंड हाथियोंने किसी नदीको मथ डाला हो॥ १७॥

रक्षःपतिस्तदवलोक्य निकुम्भकुम्भ-
धूम्राक्षदुर्मुखसुरान्तनरान्तकादीन् ।
पुत्रं प्रहस्तमतिकायविकम्पनादीन्
सर्वानुगान् समहिनोदथ कुम्भकर्णम्॥ १८

यह देखकर राक्षसराज रावणने निकुम्भ, कुम्भ, धूम्राक्ष, दुर्मुख, सुरान्तक, नरान्तक, प्रहस्त, अतिकाय, विकम्पन आदि अपने सब अनुचरों, पुत्र मेघनाद और अन्तमें भाई कुम्भकर्णको भी युद्ध करनेके लिये भेजा॥ १८॥

तां यातुधानपृतनामसिशूलचाप-
प्रासर्ष्टिशक्तिशरतोमरखड्गदुर्गाम् ।
सुग्रीवलक्ष्मणमरुत्सुतगन्धमाद-
नीलांगदर्क्षपनसादिभिरन्वितोऽगात्॥ १९

राक्षसोंकी वह विशाल सेना तलवार, त्रिशूल, धनुष, प्रास, ऋष्टि, शक्ति, बाण, भाले, खड्ग आदि शस्त्र-अस्त्रोंसे सुरक्षित और अत्यन्त दुर्गम थी। भगवान् श्रीरामने सुग्रीव, लक्ष्मण, हनूमान्, गन्धमादन, नील, अंगद, जाम्बवान् और पनस आदि वीरोंको अपने साथ लेकर राक्षसोंकी सेनाका सामना किया॥ १९॥

तेऽनीकपा रघुपतेरभिपत्य सर्वे
द्वन्द्वं वरूथमिभपत्तिरथाश्वयोधैः ।
जघ्नुर्द्रुमैर्गिरिगदेषुभिरंगदाद्याः
सीताभिमर्शहतमंगलरावणेशान्॥ २०

रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामके अंगद आदि सब सेनापति राक्षसोंकी चतुरंगिणी सेना—हाथी, रथ, घुड़सवार और पैदलोंके साथ द्वन्द्वयुद्धकी रीतिसे भिड़ गये और राक्षसोंको वृक्ष, पर्वतशिखर, गदा और बाणोंसे मारने लगे। उनका मारा जाना तो स्वाभाविक ही था। क्योंकि वे उसी रावणके अनुचर थे, जिसका मंगल श्रीसीताजीको स्पर्श करनेके कारण पहले ही नष्ट हो चुका था॥ २०॥

रक्षःपतिः स्वबलनष्टिमवेक्ष्य रुष्ट
आरुह्य यानकमथाभिससार रामम्।[2]
स्वःस्यन्दने द्युमति[3] मातलिनोपनीते
विभ्राजमानमहनन्निशितैः क्षुरप्रैः॥ २१

जब राक्षसराज रावणने देखा कि मेरी सेनाका तो नाश हुआ जा रहा है, तब वह क्रोधमें भरकर पुष्पक विमानपर आरूढ़ हो भगवान् श्रीरामके सामने आया। उस समय इन्द्रका सारथि मातलि बड़ा ही तेजस्वी दिव्य रथ लेकर आया और उसपर भगवान् श्रीरामजी विराजमान हुए। रावण अपने तीखे बाणोंसे उनपर प्रहार करने लगा॥ २१॥

---

१. कोष०। २. पालक०। ३. महति।

रामस्तमाह पुरुषादपुरीष यन्नः
कान्तासमक्षमसतापहृता श्ववत्[1] ते।
त्यक्तत्रपस्य फलमद्य जुगुप्सितस्य
यच्छामि काल इव कर्तुरलंघ्यवीर्यः॥ २२

भगवान् श्रीरामजीने रावणसे कहा—'नीच राक्षस! तुम कुत्तेकी तरह हमारी अनुपस्थितिमें हमारी प्राणप्रिया पत्नीको हर लाये! तुमने दुष्टताकी हद कर दी! तुम्हारे-जैसा निर्लज्ज तथा निन्दनीय और कौन होगा। जैसे कालको कोई टाल नहीं सकता—कर्तापनके अभिमानीको वह फल दिये बिना रह नहीं सकता, वैसे ही आज मैं तुम्हें तुम्हारी करनीका फल चखाता हूँ'॥ २२॥

एवं क्षिपन् धनुषि संधितमुत्ससर्ज
बाणं स वज्रमिव तद्धृदयं बिभेद।
सोऽसृग् वमन् दशमुखैर्न्यपतद् विमाना-
द्धाहेति जल्पति जने सुकृतीव रिक्तः॥ २३

इस प्रकार रावणको फटकारते हुए भगवान् श्रीरामने अपने धनुषपर चढ़ाया हुआ बाण उसपर छोड़ा। उस बाणने वज्रके समान उसके हृदयको विदीर्ण कर दिया। वह अपने दसों मुखोंसे खून उगलता हुआ विमानसे गिर पड़ा—ठीक वैसे ही, जैसे पुण्यात्मालोग भोग समाप्त होनेपर स्वर्गसे गिर पड़ते हैं। उस समय उसके पुरजन-परिजन 'हाय-हाय' करके चिल्लाने लगे॥ २३॥

ततो निष्क्रम्य लंकाया यातुधान्यः सहस्रशः।
मन्दोदर्या समं तस्मिन् प्ररुदत्य[2] उपाद्रवन्॥ २४

तदनन्तर हजारों राक्षसियाँ मन्दोदरीके साथ रोती हुई लंकासे निकल पड़ीं और रणभूमिमें आयीं॥ २४॥

स्वान् स्वान् बन्धून् परिष्वज्य लक्ष्मणेषुभिरर्दितान्।
रुरुदुः सुस्वरं दीना घ्नन्त्य आत्मानमात्मना॥ २५

उन्होंने देखा कि उनके स्वजन-सम्बन्धी लक्ष्मणजीके बाणोंसे छिन्न-भिन्न होकर पड़े हुए हैं। वे अपने हाथों अपनी छाती पीट-पीटकर और अपने सगे-सम्बन्धियोंको हृदयसे लगा-लगाकर ऊँचे स्वरसे विलाप करने लगीं॥ २५॥

हा हताः स्म वयं नाथ लोकरावण रावण।
कं यायाच्छरणं लंका त्वद्विहीना परार्दिता॥ २६

हाय-हाय! स्वामी! आज हम सब बेमौत मारी गयीं। एक दिन वह था, जब आपके भयसे समस्त लोकोंमें त्राहि-त्राहि मच जाती थी। आज वह दिन आ पहुँचा कि आपके न रहनेसे हमारे शत्रु लंकाकी दुर्दशा कर रहे हैं और यह प्रश्न उठ रहा है कि अब लंका किसके अधीन रहेगी॥ २६॥

नैवं वेद महाभाग भवान् कामवशं गतः।
तेजोऽनुभावं सीताया येन नीतो दशामिमाम्॥ २७

आप सब प्रकारसे सम्पन्न थे, किसी भी बातकी कमी न थी। परन्तु आप कामके वश हो गये और यह नहीं सोचा कि सीताजी कितनी तेजस्विनी हैं और उनका कितना प्रभाव है। आपकी यही भूल आपकी इस दुर्दशाका कारण बन गयी॥ २७॥

---

१. स्वयन्ते। २. रुदत्यस्ता०।

कृतैषा विधवा लंका वयं च कुलनन्दन।
देहः कृतोऽन्नं गृध्राणामात्मा नरकहेतवे॥ २८

श्रीशुक उवाच

स्वानां विभीषणश्चक्रे कोसलेन्द्रानुमोदितः।
पितृमेधविधानेन यदुक्तं साम्परायिकम्॥ २९

ततो ददर्श भगवानशोकवनिकाश्रमे[1]।
क्षामां स्वविरहव्याधिं शिंशपामूलमास्थिताम्॥ ३०

रामः प्रियतमां भार्यां दीनां वीक्ष्यान्वकम्पत।
आत्मसंदर्शनाह्लादविकसन्मुखपंकजाम्॥ ३१

आरोप्यारुरुहे यानं भ्रातृभ्यां हनुमद्युतः।
विभीषणाय भगवान् दत्त्वा रक्षोगणेशताम्॥ ३२

लंकामायुश्च कल्पान्तं ययौ चीर्णव्रतः पुरीम्।
अवकीर्यमाणः कुसुमैर्लोकपालार्पितैः पथि॥ ३३

उपगीयमानचरितः शतधृत्यादिभिर्मुदा।
गोमूत्रयावकं श्रुत्वा भ्रातरं वल्कलाम्बरम्॥ ३४

महाकारुणिकोऽतप्यज्जटिलं स्थण्डिलेशयम्।
भरतः प्राप्तमाकर्ण्य पौरामात्यपुरोहितैः॥ ३५

पादुके शिरसि न्यस्य रामं प्रत्युद्यतोऽग्रजम्[2]।
नन्दिग्रामात् स्वशिबिराद् गीतवादित्रनिःस्वनैः॥ ३६

ब्रह्मघोषेण च मुहुः पठद्भिर्ब्रह्मवादिभिः[3]।
स्वर्णकक्षपताकाभिर्हैमैश्चित्रध्वजै रथैः॥ ३७

कभी आपके कामोंसे हम सब और समस्त राक्षसवंश आनन्दित होता था और आज हम सब तथा यह सारी लंका नगरी विधवा हो गयी। आपका वह शरीर, जिसके लिये आपने सब कुछ कर डाला, आज गीधोंका आहार बन रहा है और अपने आत्माको आपने नरकका अधिकारी बना डाला। यह सब आपकी ही नासमझी और कामुकताका फल है॥ २८॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं— परीक्षित्! कोसलाधीश भगवान् श्रीरामचन्द्रजीकी आज्ञासे विभीषणने अपने स्वजन-सम्बन्धियोंका पितृयज्ञकी विधिसे शास्त्रके अनुसार अन्त्येष्टिकर्म किया॥ २९॥ इसके बाद भगवान् श्रीरामने अशोक-वाटिकाके आश्रममें अशोक वृक्षके नीचे बैठी हुई श्रीसीताजीको देखा। वे उन्हींके विरहकी व्याधिसे पीड़ित एवं अत्यन्त दुर्बल हो रही थीं॥ ३०॥ अपनी प्राणप्रिया अर्धांगिनी श्रीसीताजीको अत्यन्त दीन अवस्थामें देखकर श्रीरामका हृदय प्रेम और कृपासे भर आया। इधर भगवान्‌का दर्शन पाकर सीताजीका हृदय प्रेम और आनन्दसे परिपूर्ण हो गया, उनका मुखकमल खिल उठा॥ ३१॥ भगवान्‌ने विभीषणको राक्षसोंका स्वामित्व, लंकापुरीका राज्य और एक कल्पकी आयु दी और इसके बाद पहले सीताजीको विमानपर बैठाकर अपने दोनों भाई लक्ष्मण तथा सुग्रीव एवं सेवक हनूमान्‌जीके साथ स्वयं भी विमानपर सवार हुए। इस प्रकार चौदह वर्षका व्रत पूरा हो जानेपर उन्होंने अपने नगरकी यात्रा की। उस समय मार्गमें ब्रह्मा आदि लोकपालगण उनपर बड़े प्रेमसे पुष्पोंकी वर्षा कर रहे थे॥ ३२-३३॥

इधर तो ब्रह्मा आदि बड़े आनन्दसे भगवान्‌की लीलाओंका गान कर रहे थे और उधर जब भगवान्‌को यह मालूम हुआ कि भरतजी केवल गोमूत्रमें पकाया हुआ जौका दलिया खाते हैं, वल्कल पहनते हैं और पृथ्वीपर डाभ बिछाकर सोते हैं एवं उन्होंने जटाएँ बढ़ा रखी हैं, तब वे बहुत दुःखी हुए। उनकी दशाका स्मरण कर परम करुणाशील भगवान्‌का हृदय भर आया। जब भरतको मालूम हुआ कि मेरे बड़े भाई भगवान् श्रीरामजी आ रहे हैं, तब वे पुरवासी, मन्त्री

---

१. कावने। २. प्रत्युद्गतो। ३. शंसद्भि०।

सदश्वै रुक्मसन्नाहैर्भटैः पुरटवर्मभिः।
श्रेणीभिर्वारमुख्याभिर्भृत्यैश्चैव पदानुगैः॥ ३८

पारमेष्ठ्यान्युपादाय पण्यान्युच्चावचानि च।
पादयोर्न्यपतत्[1] प्रेम्णा प्रक्लिन्नहृदयेक्षणः॥ ३९

पादुके न्यस्य पुरतः प्रांजलिर्बाष्पलोचनः।
तमाश्लिष्य चिरं दोर्भ्यां स्नापयन् नेत्रजैर्जलैः॥ ४०

रामो लक्ष्मणसीताभ्यां विप्रेभ्यो येऽर्हसत्तमाः।
तेभ्यः स्वयं नमश्चक्रे प्रजाभिश्च नमस्कृतः॥ ४१

धुन्वन्त उत्तरासंगान् पतिं वीक्ष्य चिरागतम्।
उत्तराः कोसला माल्यैः किरन्तो ननृतुर्मुदा॥ ४२

पादुके भरतोऽगृह्णाच्चामरव्यजनोत्तमे।
विभीषणः ससुग्रीवः श्वेतच्छत्रं मरुत्सुतः॥ ४३

धनुर्निषंगाञ्छत्रुघ्नः[2] सीता तीर्थकमण्डलुम्।
अबिभ्रदंगदः खड्गं हैमं चर्मर्क्षराण् नृप॥ ४४

और पुरोहितोंको साथ लेकर एवं भगवान्‌की पादुकाएँ सिरपर रखकर उनकी अगवानीके लिये चले। जब भरतजी अपने रहनेके स्थान नन्दिग्रामसे चले, तब लोग उनके साथ-साथ मंगलगान करते, बाजे बजाते चलने लगे। वेदवादी ब्राह्मण बार-बार वेदमन्त्रोंका उच्चारण करने लगे और उसकी ध्वनि चारों ओर गूँजने लगी। सुनहरी कामदार पताकाएँ फहराने लगीं। सोनेसे मढ़े हुए तथा रंग-बिरंगी ध्वजाओंसे सजे हुए रथ, सुनहले साजसे सजाये हुए सुन्दर घोड़े तथा सोनेके कवच पहने हुए सैनिक उनके साथ-साथ चलने लगे। सेठ-साहूकार, श्रेष्ठ वारांगनाएँ, पैदल चलनेवाले सेवक और महाराजाओंके योग्य छोटी-बड़ी सभी वस्तुएँ उनके साथ चल रही थीं। भगवान्‌को देखते ही प्रेमके उद्रेकसे भरतजीका हृदय गद्‌गद हो गया, नेत्रोंमें आँसू छलक आये, वे भगवान्‌के चरणोंपर गिर पड़े॥ ३४—३९॥ उन्होंने प्रभुके सामने उनकी पादुकाएँ रख दीं और हाथ जोड़कर खड़े हो गये। नेत्रोंसे आँसूकी धारा बहती जा रही थी। भगवान्‌ने अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर बहुत देरतक भरतजीको हृदयसे लगाये रखा। भगवान्‌के नेत्रजलसे भरतजीका स्नान हो गया॥ ४०॥ इसके बाद सीताजी और लक्ष्मणजीके साथ भगवान् श्रीरामजीने ब्राह्मण और पूजनीय गुरुजनोंको नमस्कार किया तथा सारी प्रजाने बड़े प्रेमसे सिर झुकाकर भगवान्‌के चरणोंमें प्रणाम किया॥ ४१॥ उस समय उत्तरकोसल देशकी रहनेवाली समस्त प्रजा अपने स्वामी भगवान्‌को बहुत दिनोंके बाद आये देख अपने दुपट्टे हिला-हिलाकर पुष्पोंकी वर्षा करती हुई आनन्दसे नाचने लगी॥ ४२॥ भरतजीने भगवान्‌की पादुकाएँ लीं, विभीषणने श्रेष्ठ चँवर, सुग्रीवने पंखा और श्री-हनूमान्‌जीने श्वेत छत्र ग्रहण किया॥ ४३॥ परीक्षित्! शत्रुघ्नजीने धनुष और तरकस, सीताजीने तीर्थोंके जलसे भरा कमण्डलु, अंगदने सोनेका खड्ग और जाम्बवान्‌ने ढाल ले ली॥ ४४॥

---

१. तन्मूर्ध्ना। २. ङ्गं शत्रु०।

पुष्पकस्थोऽन्वितः[1] स्त्रीभिः स्तूयमानश्च वन्दिभिः।
विरेजे भगवान् राजन् ग्रहैश्चन्द्र इवोदितः॥ ४५

इन लोगोंके साथ भगवान् पुष्पक विमानपर विराजमान हो गये, चारों तरफ यथास्थान स्त्रियाँ बैठ गयीं, वन्दीजन स्तुति करने लगे। उस समय पुष्पक विमानपर भगवान् श्रीरामकी ऐसी शोभा हुई, मानो ग्रहोंके साथ चन्द्रमा उदय हो रहे हों॥ ४५॥

भ्रातृभिर्नन्दितः सोऽपि सोत्सवां प्राविशत् पुरीम्।
प्रविश्य राजभवनं गुरुपत्नीः[2] स्वमातरम्॥ ४६

गुरून् वयस्यावरजान् पूजितः प्रत्यपूजयत्।
वैदेही लक्ष्मणश्चैव यथावत् समुपेयतुः॥ ४७

इस प्रकार भगवान्ने भाइयोंका अभिनन्दन स्वीकार करके उनके साथ अयोध्यापुरीमें प्रवेश किया। उस समय वह पुरी आनन्दोत्सवसे परिपूर्ण हो रही थी। राजमहलमें प्रवेश करके उन्होंने अपनी माता कौसल्या, अन्य माताओं, गुरुजनों, बराबरके मित्रों और छोटोंका यथायोग्य सम्मान किया तथा उनके द्वारा किया हुआ सम्मान स्वीकार किया। श्रीसीताजी और लक्ष्मणजीने भी भगवान्के साथ-साथ सबके प्रति यथायोग्य व्यवहार किया॥ ४६-४७॥ उस समय जैसे मृतक शरीरमें प्राणोंका संचार हो जाय, वैसे ही माताएँ अपने पुत्रोंके आगमनसे हर्षित हो उठीं। उन्होंने उनको अपनी गोदमें बैठा लिया और अपने आँसुओंसे उनका अभिषेक किया। उस समय उनका सारा शोक मिट गया॥ ४८॥ इसके बाद वसिष्ठजीने दूसरे गुरुजनोंके साथ विधि-पूर्वक भगवान्की जटा उतरवायी और बृहस्पतिने जैसे इन्द्रका अभिषेक किया था, वैसे ही चारों समुद्रोंके जल आदिसे उनका अभिषेक किया॥ ४९॥ इस प्रकार सिरसे स्नान करके भगवान् श्रीरामने सुन्दर वस्त्र, पुष्पमालाएँ और अलंकार धारण किये। सभी भाइयों और श्रीजानकीजीने भी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र और अलंकार धारण किये। उनके साथ भगवान् श्रीरामजी अत्यन्त शोभायमान हुए॥ ५०॥ भरतजीने उनके चरणोंमें गिरकर उन्हें प्रसन्न किया और उनके आग्रह करनेपर भगवान् श्रीरामने राजसिंहासन स्वीकार किया। इसके बाद वे अपने-अपने धर्ममें तत्पर तथा वर्णाश्रमके आचारको निभानेवाली प्रजाका पिताके समान पालन करने लगे। उनकी प्रजा भी उन्हें अपना पिता ही मानती थी॥ ५१॥

पुत्रान् स्वमातरस्तास्तु प्राणांस्तन्व इवोत्थिताः।
आरोप्याङ्केऽभिषिंचन्त्यो बाष्पौघैर्विजहुः शुचः॥ ४८

जटा निर्मुच्य विधिवत् कुलवृद्धैः समं गुरुः।
अभ्यषिंचद् यथैवेन्द्रं चतुर्[3]सिन्धुजलादिभिः॥ ४९

एवं कृतशिरःस्नानः सुवासाः स्रग्व्यलंकृतः।
स्वलंकृतैः सुवासोभिर्भ्रातृभिर्भार्यया बभौ॥ ५०

अग्रहीदासनं भ्रात्रा प्रणिपत्य प्रसादितः।
प्रजाः स्वधर्मनिरता वर्णाश्रमगुणान्विताः।
जुगोप पितृवद् रामो मेनिरे पितरं च तम्॥ ५१

१. स्थो वृतः। २. पत्नीं। ३. चतुर्भिः सागराम्बुभिः।

त्रेतायां वर्तमानायां कालः कृतसमोऽभवत्।
रामे राजनि धर्मज्ञे सर्वभूतसुखावहे॥ ५२

वनानि नद्यो गिरयो वर्षाणि द्वीपसिन्धवः।
सर्वे कामदुघा आसन् प्रजानां भरतर्षभ॥ ५३

[१]नाधिव्याधिजराग्लानिदुःखशोकभयक्लमाः।
मृत्युश्चानिच्छतां नासीद् रामे राजन्यधोक्षजे॥ ५४

एकपत्नीव्रतधरो राजर्षिचरितः शुचिः।
स्वधर्मं गृहमेधीयं शिक्षयन् स्वयमाचरत्॥ ५५

प्रेम्णानुवृत्त्या शीलेन प्रश्रयावनता सती।
धिया ह्रिया च भावज्ञा भर्तुः सीताहरन्मनः॥ ५६

परीक्षित्! जब समस्त प्राणियोंको सुख देनेवाले परम धर्मज्ञ भगवान् श्रीराम राजा हुए तब था तो त्रेतायुग, परन्तु मालूम होता था मानो सत्ययुग ही है॥ ५२॥ परीक्षित्! उस समय वन, नदी, पर्वत, वर्ष, द्वीप और समुद्र—सब-के-सब प्रजाके लिये कामधेनुके समान समस्त कामनाओंको पूर्ण करनेवाले बन रहे थे॥ ५३॥ इन्द्रियातीत भगवान् श्रीरामके राज्य करते समय किसीको मानसिक चिन्ता या शारीरिक रोग नहीं होते थे। बुढ़ापा, दुर्बलता, दुःख, शोक, भय और थकावट नाममात्रके लिये भी नहीं थे। यहाँतक कि जो मरना नहीं चाहते थे, उनकी मृत्यु भी नहीं होती थी॥ ५४॥ भगवान् श्रीरामने एकपत्नीका व्रत धारण कर रखा था, उनके चरित्र अत्यन्त पवित्र एवं राजर्षियोंके-से थे। वे गृहस्थोचित स्वधर्मकी शिक्षा देनेके लिये स्वयं उस धर्मका आचरण करते थे॥ ५५॥ सती-शिरोमणि सीताजी अपने पतिके हृदयका भाव जानती रहतीं। वे प्रेमसे, सेवासे, शीलसे, अत्यन्त विनयसे तथा अपनी बुद्धि और लज्जा आदि गुणोंसे अपने पति भगवान् श्रीरामजीका चित्त चुराती रहती थीं॥ ५६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे रामचरिते[२] दशमोऽध्यायः॥ १०॥

अथैकादशोऽध्यायः

भगवान् श्रीरामकी शेष लीलाओंका वर्णन

श्रीशुक उवाच

भगवानात्मनाऽऽत्मानं राम उत्तमकल्पकैः[३]।
सर्वदेवमयं[४] देवमीज आचार्यवान् मखैः॥ १
होत्रेऽददाद्[५] दिशं प्राचीं ब्रह्मणे दक्षिणां प्रभुः।
अध्वर्यवे प्रतीचीं च उदीचीं सामगाय सः॥ २
आचार्याय ददौ शेषां यावती भूस्तदन्तरा।
मन्यमान इदं कृत्स्नं ब्राह्मणोऽर्हति निःस्पृहः॥ ३

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—परीक्षित्! भगवान् श्रीरामने गुरु वसिष्ठजीको अपना आचार्य बनाकर उत्तम सामग्रियोंसे युक्त यज्ञोंके द्वारा अपने-आप ही अपने सर्वदेवस्वरूप स्वयंप्रकाश आत्माका यजन किया॥ १॥ उन्होंने होताको पूर्व दिशा, ब्रह्माको दक्षिण, अध्वर्युको पश्चिम और उद्गाताको उत्तर दिशा दे दी॥ २॥ उनके बीचमें जितनी भूमि बच रही थी, वह उन्होंने आचार्यको दे दी। उनका यह निश्चय था कि सम्पूर्ण भूमण्डलका एकमात्र अधिकारी निःस्पृह ब्राह्मण ही है॥ ३॥

---

१. नाधिर्व्याधिर्जरा ग्लानिर्दुःख०। २. रामानुचरितं नाम। ३. कल्पकः। ४. मयो। ५. होत्रे तदादिशत्प्राचीं।

इत्ययं तदलंकारवासोभ्यामवशेषितः।
तथा राज्ञ्यपि वैदेही सौमंगल्यावशेषिता॥ ४

इस प्रकार सारे भूमण्डलका दान करके उन्होंने अपने शरीरके वस्त्र और अलंकार ही अपने पास रखे। इसी प्रकार महारानी सीताजीके पास भी केवल मांगलिक वस्त्र और आभूषण ही बच रहे॥ ४॥

ते तु ब्रह्मण्यदेवस्य वात्सल्यं वीक्ष्य संस्तुतम्।
प्रीताः क्लिन्नधियस्तस्मै प्रत्यर्प्येदं बभाषिरे॥ ५

जब आचार्य आदि ब्राह्मणोंने देखा कि भगवान् श्रीराम तो ब्राह्मणोंको ही अपना इष्टदेव मानते हैं, उनके हृदयमें ब्राह्मणोंके प्रति अनन्त स्नेह है, तब उनका हृदय प्रेमसे द्रवित हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर सारी पृथ्वी भगवान्‌को लौटा दी और कहा॥ ५॥

अप्रत्तं नस्त्वया किं नु भगवन् भुवनेश्वर।
यन्नोऽन्तर्हृदयं विश्य तमो हंसि स्वरोचिषा॥ ६

'प्रभो! आप सब लोकोंके एकमात्र स्वामी हैं। आप तो हमारे हृदयके भीतर रहकर अपनी ज्योतिसे अज्ञानान्धकारका नाश कर रहे हैं। ऐसी स्थितिमें भला, आपने हमें क्या नहीं दे रखा है॥ ६॥ आपका ज्ञान अनन्त है। पवित्र कीर्तिवाले पुरुषोंमें आप सर्वश्रेष्ठ हैं। उन महात्माओंको, जो किसीको किसी प्रकारकी पीड़ा नहीं पहुँचाते, आपने अपने चरणकमल दे रखे हैं। ऐसा होनेपर भी आप ब्राह्मणोंको अपना इष्टदेव मानते हैं। भगवन्! आपके इस रामरूपको हम नमस्कार करते हैं'॥ ७॥

नमो ब्रह्मण्यदेवाय रामायाकुण्ठमेधसे।
उत्तमश्लोकधुर्याय न्यस्तदण्डार्पिताङ्घ्रये॥ ७

कदाचिल्लोकजिज्ञासुर्गूढो रात्र्यामलक्षितः।
चरन् वाचोऽशृणोद् रामो भार्यामुद्दिश्य कस्यचित्॥ ८

परीक्षित्! एक बार अपनी प्रजाकी स्थिति जाननेके लिये भगवान् श्रीरामजी रातके समय छिपकर बिना किसीको बतलाये घूम रहे थे। उस समय उन्होंने किसीकी यह बात सुनी। वह अपनी पत्नीसे कह रहा था॥ ८॥ 'अरी! तू दुष्ट और कुलटा है। तू पराये घरमें रह आयी है। स्त्री-लोभी राम भले ही सीताको रख लें, परन्तु मैं तुझे फिर नहीं रख सकता'॥ ९॥ सचमुच सब लोगोंको प्रसन्न रखना टेढ़ी खीर है। क्योंकि मूर्खोंकी तो कमी नहीं है। जब भगवान् श्रीरामने बहुतोंके मुँहसे ऐसी बात सुनी, तो वे लोकापवादसे कुछ भयभीत-से हो गये। उन्होंने श्रीसीताजीका परित्याग कर दिया और वे वाल्मीकि मुनिके आश्रममें रहने लगीं॥ १०॥ सीताजी उस समय गर्भवती थीं। समय आनेपर उन्होंने एक साथ ही दो पुत्र उत्पन्न किये। उनके नाम हुए—कुश और लव। वाल्मीकि मुनिने उनके जात-कर्मादि संस्कार किये॥ ११॥

नाहं बिभर्मि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम्।
स्त्रीलोभी बिभृयात् सीतां रामो नाहं भजे पुनः॥ ९

इति लोकाद् बहुमुखाद् दुराराध्यादसंविदः।
पत्या भीतेन सा त्यक्ता प्राप्ता प्राचेतसाश्रमम्॥ १०

अन्तर्वत्न्यागते काले यमौ सा सुषुवे सुतौ।
कुशो लव इति ख्यातौ तयोश्चक्रे क्रिया मुनिः॥ ११

अंगदश्चित्रकेतुश्च लक्ष्मणस्यात्मजौ स्मृतौ।[1]
तक्षः पुष्कल इत्यास्तां भरतस्य महीपते॥ १२

सुबाहुः श्रुतसेनश्च शत्रुघ्नस्य बभूवतुः।
गन्धर्वान् कोटिशो जघ्ने भरतो विजये दिशाम्॥ १३

तदीयं धनमानीय सर्वं राज्ञे न्यवेदयत्।
शत्रुघ्नश्च मधोः पुत्रं लवणं नाम राक्षसम्।
हत्वा मधुवने चक्रे मथुरां नाम वै पुरीम्॥ १४

मुनौ निक्षिप्य तनयौ सीता भर्त्रा विवासिता।
ध्यायन्ती रामचरणौ विवरं प्रविवेश ह॥ १५

तच्छ्रुत्वा भगवान् रामो रुन्धन्नपि धिया शुचः।
स्मरंस्तस्या गुणांस्तांस्तान्नाशक्नोद् रोद्धुमीश्वरः॥ १६

स्त्रीपुंप्रसंग एतादृक्सर्वत्र[2] त्रासमावहः।
अपीश्वराणां किमुत ग्राम्यस्य गृहचेतसः॥ १७

तत ऊर्ध्वं ब्रह्मचर्यं धारयन्नजुहोत् प्रभुः।
त्रयोदशाब्दसाहस्रमग्निहोत्रमखण्डितम्॥ १८

स्मरतां हृदि विन्यस्य विद्धं दण्डककण्टकैः।
स्वपादपल्लवं राम आत्मज्योतिरगात् ततः॥ १९

नेदं यशो रघुपतेः सुरयाच्ञयाऽऽत्त-
लीलातनोरधिकसाम्यविमुक्तधाम्नः।
रक्षोवधो जलधिबन्धनमस्त्रपूगैः[3]
किं तस्य शत्रुहनने कपयः सहायाः॥ २०

लक्ष्मणजीके दो पुत्र हुए—अंगद और चित्रकेतु। परीक्षित्! इसी प्रकार भरतजीके भी दो ही पुत्र थे—तक्ष और पुष्कल॥ १२॥ तथा शत्रुघ्नके भी दो पुत्र हुए—सुबाहु और श्रुतसेन। भरतजीने दिग्विजयमें करोड़ों गन्धर्वोंका संहार किया॥ १३॥ उन्होंने उनका सब धन लाकर अपने बड़े भाई भगवान् श्रीरामकी सेवामें निवेदन किया। शत्रुघ्नजीने मधुवनमें मधुके पुत्र लवण नामक राक्षसको मारकर वहाँ मथुरा नामकी पुरी बसायी॥ १४॥ भगवान् श्रीरामके द्वारा निर्वासित सीताजीने अपने पुत्रोंको वाल्मीकिजीके हाथोंमें सौंप दिया और भगवान् श्रीरामके चरणकमलोंका ध्यान करती हुई वे पृथ्वीदेवीके लोकमें चली गयीं॥ १५॥ यह समाचार सुनकर भगवान् श्रीरामने अपने शोका-वेशको बुद्धिके द्वारा रोकना चाहा, परन्तु परम समर्थ होनेपर भी वे उसे रोक न सके। क्योंकि उन्हें जानकीजीके पवित्र गुण बार-बार स्मरण हो आया करते थे॥ १६॥ परीक्षित्! यह स्त्री और पुरुषका सम्बन्ध सब कहीं इसी प्रकार दुःखका कारण है। यह बात बड़े-बड़े समर्थ लोगोंके विषयमें भी ऐसी ही है, फिर गृहासक्त विषयी पुरुषके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या है॥ १७॥

इसके बाद भगवान् श्रीरामने ब्रह्मचर्य धारण करके तेरह हजार वर्षतक अखण्डरूपसे अग्निहोत्र किया॥ १८॥ तदनन्तर अपना स्मरण करनेवाले भक्तोंके हृदयमें अपने उन चरणकमलोंको स्थापित करके, जो दण्डकवनके काँटोंसे बिंध गये थे, अपने स्वयंप्रकाश परम ज्योतिर्मय धाममें चले गये॥ १९॥

परीक्षित्! भगवान्के समान प्रतापशाली और कोई नहीं है, फिर उनसे बढ़कर तो हो ही कैसे सकता है। उन्होंने देवताओंकी प्रार्थनासे ही यह लीला-विग्रह धारण किया था। ऐसी स्थितिमें रघुवंश-शिरोमणि भगवान् श्रीरामके लिये यह कोई बड़े गौरवकी बात नहीं है कि उन्होंने अस्त्र-शस्त्रोंसे राक्षसोंको मार डाला या समुद्रपर पुल बाँध दिया। भला, उन्हें शत्रुओंको मारनेके लिये बंदरोंकी सहायताकी भी आवश्यकता थी क्या? यह सब उनकी लीला ही है॥ २०॥

---

१. दश्चन्द्रके०। २. सर्वत्रोत्तापमावहत्। ३. स्त्रपाणेः।

यस्यामलं नृपसदस्सु यशोऽधुनापि
गायन्त्यघघ्नमृषयो दिगिभेन्द्रपट्टम्।
तं नाकपालवसुपालकिरीटजुष्ट-
पादाम्बुजं रघुपतिं शरणं प्रपद्ये॥ २१

स यैः स्पृष्टोऽभिदृष्टो वा संविष्टोऽनुगतोऽपि वा।
कोसलास्ते ययुः स्थानं यत्र गच्छन्ति योगिनः॥ २२

पुरुषो रामचरितं श्रवणैरुपधारयन्।
आनृशंस्यपरो राजन् कर्मबन्धैर्विमुच्यते॥ २३

राजोवाच

कथं स भगवान् रामो भ्रातॄन् वा स्वयमात्मनः।
तस्मिन् वा तेऽन्ववर्तन्त प्रजाः पौराश्च ईश्वरे॥ २४

श्रीशुक उवाच

अथादिशद् दिग्विजये भ्रातॄंस्त्रिभुवनेश्वरः।
आत्मानं दर्शयन् स्वानां पुरीमैक्षत सानुगः॥ २५

आसिक्तमार्गां गन्धोदैः करिणां मदशीकरैः।
स्वामिनं प्राप्तमालोक्य मत्तां वा सुतरामिव॥ २६

प्रासादगोपुरसभाचैत्यदेवगृहादिषु ।
विन्यस्तहेमकलशैः पताकाभिश्च मण्डिताम्॥ २७

भगवान् श्रीरामका निर्मल यश समस्त पापोंको नष्ट कर देनेवाला है। वह इतना फैल गया है कि दिग्गजोंका श्यामल शरीर भी उसकी उज्ज्वलतासे चमक उठता है। आज भी बड़े-बड़े ऋषि-महर्षि राजाओंकी सभामें उसका गान करते रहते हैं। स्वर्गके देवता और पृथ्वीके नरपति अपने कमनीय किरीटोंसे उनके चरणकमलोंकी सेवा करते रहते हैं। मैं उन्हीं रघुवंशशिरोमणि भगवान् श्रीरामचन्द्रकी शरण ग्रहण करता हूँ॥ २१॥

जिन्होंने भगवान् श्रीरामका दर्शन और स्पर्श किया, उनका सहवास अथवा अनुगमन किया—वे सब-के-सब तथा कोसलदेशके निवासी भी उसी लोकमें गये, जहाँ बड़े-बड़े योगी योग-साधनाके द्वारा जाते हैं॥ २२॥

जो पुरुष अपने कानोंसे भगवान् श्रीरामका चरित्र सुनता है—उसे सरलता, कोमलता आदि गुणोंकी प्राप्ति होती है। परीक्षित्! केवल इतना ही नहीं, वह समस्त कर्म-बन्धनोंसे मुक्त हो जाता है॥ २३॥

राजा परीक्षित्ने पूछा—भगवान् श्रीराम स्वयं अपने भाइयोंके साथ किस प्रकारका व्यवहार करते थे? तथा भरत आदि भाई, प्रजाजन और अयोध्यावासी भगवान् श्रीरामके प्रति कैसा बर्ताव करते थे?॥ २४॥

श्रीशुकदेवजी कहते हैं—त्रिभुवनपति महाराज श्रीरामने राजसिंहासन स्वीकार करनेके बाद अपने भाइयोंको दिग्विजयकी आज्ञा दी और स्वयं अपने निजजनोंको दर्शन देते हुए अपने अनुचरोंके साथ वे पुरीकी देख-रेख करने लगे॥ २५॥

उस समय अयोध्यापुरीके मार्ग सुगन्धित जल और हाथियोंके मदकणोंसे सिंचे रहते। ऐसा जान पड़ता, मानो यह नगरी अपने स्वामी भगवान् श्रीरामको देखकर अत्यन्त मतवाली हो रही है॥ २६॥

उसके महल, फाटक, सभाभवन, विहार और देवालय आदिमें सुवर्णके कलश रखे हुऐ थे और स्थान-स्थानपर पताकाएँ फहरा रही थीं॥ २७॥

पूगैः सवृन्तै रम्भाभिः पट्टिकाभिः सुवाससाम्।
आदर्शैरंशुकैः स्रग्भिः कृतकौतुकतोरणाम्॥ २८

तमुपेयुस्तत्र[1] तत्र पौरा अर्हणपाणयः।
आशिषो युयुजुर्देव पाहीमां प्राक् त्वयोद्धृताम्[2]॥ २९

ततः प्रजा वीक्ष्य पतिं चिरागतं
दिदृक्षयोत्सृष्टगृहाः स्त्रियो नराः।
आरुह्य हर्म्याण्यरविन्दलोचन-
मतृप्तनेत्राः कुसुमैरवाकिरन्॥ ३०

अथ प्रविष्टः स्वगृहं जुष्टं स्वैः पूर्वराजभिः।
अनन्ताखिलकोशाढ्यमनर्घ्योरुपरिच्छदम्॥ ३१

विद्रुमोदुम्बरद्वारैर्वैदूर्यस्तम्भपङ्क्तिभिः ।
स्थलैर्मारकतैः स्वच्छैर्भातस्फटिकभित्तिभिः॥ ३२

चित्रस्रग्भिः पट्टिकाभिर्वासोमणिगणांशुकैः।
मुक्ताफलैश्चिदुल्लासैः कान्तकामोपपत्तिभिः॥ ३३

धूपदीपैः सुरभिभिर्मण्डितं पुष्पमण्डनैः[3]।
स्त्रीपुम्भिः सुरसंकाशैर्जुष्टं भूषणभूषणैः॥ ३४

तस्मिन् स भगवान् रामः स्निग्धया प्रिययेष्टया।
रेमे स्वारामधीराणामृषभः सीतया किल॥ ३५

वह डंठलसमेत सुपारी, केलेके खंभे और सुन्दर वस्त्रोंके पट्टोंसे सजायी हुई थी। दर्पण, वस्त्र और पुष्पमालाओंसे तथा मांगलिक चित्रकारियों और बंदनवारोंसे सारी नगरी जगमगा रही थी॥ २८॥ नगरवासी अपने हाथोंमें तरह-तरहकी भेंटें लेकर भगवान्‌के पास आते और उनसे प्रार्थना करते कि 'देव! पहले आपने ही वराहरूपसे पृथ्वीका उद्धार किया था; अब आप ही इसका पालन कीजिये॥ २९॥ परीक्षित्! उस समय जब प्रजाको मालूम होता कि बहुत दिनोंके बाद भगवान् श्रीरामजी इधर पधारे हैं, तब सभी स्त्री-पुरुष उनके दर्शनकी लालसासे घर-द्वार छोड़कर दौड़ पड़ते। वे ऊँची-ऊँची अटारियोंपर चढ़ जाते और अतृप्त नेत्रोंसे कमलनयन भगवान्‌को देखते हुए उनपर पुष्पोंकी वर्षा करते॥ ३०॥

इस प्रकार प्रजाका निरीक्षण करके भगवान् फिर अपने महलोंमें आ जाते । उनके वे महल पूर्ववर्ती राजाओंके द्वारा सेवित थे। उनमें इतने बड़े-बड़े सब प्रकारके खजाने थे, जो कभी समाप्त नहीं होते थे। वे बड़ी-बड़ी बहुमूल्य बहुत-सी सामग्रियोंसे सुसज्जित थे॥ ३१॥ महलोंके द्वार तथा देहलियाँ मूँगेकी बनी हुई थीं। उनमें जो खंभे थे, वे वैदूर्यमणिके थे। मरकतमणिके बड़े सुन्दर-सुन्दर फर्श थे, तथा स्फटिकमणिकी दीवारें चमकती रहती थीं॥ ३२॥ रंग-बिरंगी मालाओं, पताकाओं, मणियोंकी चमक, शुद्ध चेतनके समान उज्ज्वल मोती, सुन्दर-सुन्दर भोग-सामग्री, सुगन्धित धूप-दीप तथा फूलोंके गहनोंसे वे महल खूब सजाये हुए थे। आभूषणोंको भी भूषित करनेवाले देवताओंके समान स्त्री-पुरुष उसकी सेवामें लगे रहते थे॥ ३३-३४॥

परीक्षित्! भगवान् श्रीरामजी आत्माराम जितेन्द्रिय पुरुषोंके शिरोमणि थे। उसी महलमें वे अपनी प्राणप्रिया प्रेममयी पत्नी श्रीसीताजीके साथ विहार करते थे॥ ३५॥

---

१. युस्ततस्तत्र। २. त्वयाऽऽवृताम्। ३. मण्डलैः।

बुभुजे च यथाकालं कामान् धर्ममपीडयन्।

वर्षपूगान् बहून् नृणामभिध्याताङ्घ्रिपल्लवः॥ ३६

सभी स्त्री-पुरुष जिनके चरणकमलोंका ध्यान करते रहते हैं, वे ही भगवान् श्रीराम बहुत वर्षोंतक धर्मकी मर्यादाका पालन करते हुए समयानुसार भोगोंका उपभोग करते रहे॥ ३६॥

इति श्रीमद्भागवते महापुराणे पारमहंस्यां संहितायां नवमस्कन्धे
श्रीरामोपाख्याने एकादशोऽध्यायः॥ ११॥